बुढ़ापे का 'खून'

डॉ. स्कन्द शुक्ल

बुढ़ापे का खून (विज्ञान कथा)

लेखक: डॉ. स्कन्द शुक्ल

निःशुल्क वितरण हेतु ई-प्रकाशन: 2019

सभी चित्र इन्टरनेट से साभार.
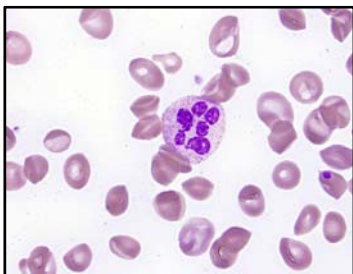
नित्य विकसित व जीर्ण होती देह के भीतर अतीत में अटका लड़खड़ाता मन: रक्त की एक स्लाइड में तैरता बहुखण्डीय न्यूट्रोफ़िल जो विटामिन बी 12 की कमी वाले रोगियों में देखने को मिलता है।

<u>**लेखक**</u>

डॉ. स्कन्द शुक्ल

22 सितम्बर 1979 को राजापुर, बान्दा में जन्म. वर्तमान में लखनऊ में गठिया-रोग विशेषज्ञ के रूप में कार्यरत. वृत्ति से चिकित्सक होने के कारण लोक-कष्ट और उसके निवारण से सहज जुड़ाव. साहित्य के प्रति गहन अनुराग आरम्भ से. अनेक कविताएँ-कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित. साथ ही दो उपन्यास 'परमारथ के कारने' और 'अधूरी औरत' भी. सामाजिक मीडिया पर भी अनेकानेक विज्ञान-स्वास्थ्य-समाज-सम्बन्धी लेखों-जानकारियों के माध्यम से वैज्ञानिक चेतना के प्रचार-प्रसार में सक्रिय.

आराध्या के दादाजी को वृद्धाश्रम भेजने की बात चल रही है। अब घर में उनका रहना न उनके लिए हितकर है और न परिवार के अन्य सदस्यों के लिए। पिछले कई महीनों से वे अजीब हरक़तें करने लगे हैं। चीज़ें रखकर भूल जाते हैं और फिर सबको बड़ी परेशानी होती है। दो बार वे अपने चश्मे खो चुके हैं और एक बार आधार कार्ड। और आज अपना पूरा बटुवा न जाने कहाँ छोड़ आये!

"दादू, आपको मेरे लिए आइसक्रीम लानी थी!" आराध्या भी अपनी शिकायत मम्मी-पापा के उलाहनों के संग जोड़ देती है।

दादाजी विवशता में सिर हिलाते हैं। वे नहीं समझ पा रहे कि उनके साथ बीत सात-आठ महीनों से क्या घट रहा है। पहले तो सब ठीक-ठाक था। पिछले साल न जाने कितनी कविताएँ वे अपने मित्रों को सोल्लास-सस्वर सुनाया करते थे। गुज़रे ज़माने की बातें रिवाइंड

होती थीं, पुराने धुँधलाये स्मृति-पटलों को मुलायम-ऊष्म फूँक मार कर साफ़ किया जाता था।

दादाजी बेग़ैरत इंसान नहीं है। लेकिन कुछ है उनके शरीर में, जिसे वे जान नहीं पा रहे। उनका अपना ही जिस्म उनके लिए पहेली बना हुआ है। आदमी जिस मकान में रहता है, उसका चप्पा-चप्पा पहचानता है। और अगर वह उस मकान को पहचानना बन्द कर दे, तो वह जंगल की अनुभूति देने लगता है। दादाजी भी यही महसूस कर रहे हैं। उन्हें अपना ही शरीर जंगल लग रहा है। ऐसा पहले तो न था! फिर अब क्या???

इस छोटे शहर में कोई वृद्धाश्रम नहीं है। ज़ाहिर है उन्हें लखनऊ जाना होगा। बड़े शहर एकाकी बुढापों के भद्र डम्पिंग ग्राउंड के रूप में उभरे हैं। रेलवे की पटरियों पर जो गाड़ियाँ अब न दौड़ पा रही हों, उन्हें पुराने मरघटी-मनहूस यार्डों में स्थानान्तरित कर दो। देखो जब तक चल जाएँ। फिर हवा-पानी में तो सारे जीर्ण-शीर्ण के क्षरण का दम है ही!

सब कुछ बाँधा जा चुका है। मूलभूत सामान, ज़रूरत भर के पैसे, एक मरियल डेबिट-कार्ड जिसका पिन बहू के पास है। बेटे से सेलफ़ोन देने को कहा था, उसने मना कर दिया। आप कहाँ परेशान होंगे पापा, हम लोग हैं न! जब ज़रूरत होगी फ़ोन कर लेंगे आपको!

दादाजी मन मसोस कर चुप मार गये हैं। एक महीन से आवाज़ उठती हैऔर टूट कर फिर बैठ जाती है। ज़रूरत अब तुमको कब होगी बेटा!

अन्तिम इच्छा के रूप में वे अपने मित्र डॉ. हरबंस से मिलना चाहते हैं। हरबंस उनके बालसखा हैं। उनकी पीढ़ी के कुछ ही जीवित लोगों में हैं, जिनसे उनके इतने पुराने सम्बन्ध हैं। और फिर वे बौद्धिक

व्यक्ति जो ठहरे। अपनी समस्या के बारे में संकोचवश आज-तक उनसे कुछ न कहा था। लेकिन आज ...

डॉ. हरबंस के यहाँ रविवार पूर्ण अवकाश का दिन होता है। काम-धाम न होने की स्थिति में वे आरामकुर्सी पर रवीन्द्र-संगीत सुन रहे हैं। ऐसे में छोटे अटपटे क़दमों की आहट सुनकर वे डीवीडी प्लेयर रोक देते हैं।

"अरे बंकिम तुम! बड़े तैयार-धैयार लग रहे हो!" हरबंस के मुँह से निकलता है।

दादाजी जवाब नहीं देते। उनके चेहरे पर विदा-भाव हैं। बहू-बेटा बाहर गाड़ी में बैठे हैं। मिलने भर के लिए पिताजी को भेजा है। मिलना चाय पीना नहीं होता। गप्प मारने को भी मिलना नहीं कहते। जल्दी से मिलिए और लखनऊ निकला जाए।

बमुश्किल दस मिनट दोनों मित्रों ने संग गुज़ारे होंगे। इतने में ही डॉ. हरबंस ताड़ गये कि बंकिम की हालत ठीक नहीं। कुछ है जो उनके शरीर में अटपटा है। उसकी याददाश्त, उनकी चाल, यहाँ तक कि उसकी बोली...।

वे इस तरह अपने बचपन के मित्र को रुख़सत नहीं कर सकते। मित्रता के सिवा उनके भीतर का चिकित्सक भी आशंकित हो चला है। वह उनके कान में धीरे से फुसफुसाता कर कहता है ---- " रोक लो इसे कुछ दिनों के लिए। ऐसा न हो कि बाद में पछताना हो।"

डॉ. हरबंस तेज़ चाल के साथ घर की सीढ़ियाँ उतरते हैं। दादाजी पीछे अपने टूटते स्वर में ढीले हाथ के संग इशारा करते रह जाते हैं। कहाँ जा रहा है यह? रुकने को तो नहीं कह रहा? मानेंगे बच्चे? एक मन तो मुझे बाँधकर यहाँ लाया था। मगर वह रोगी का मन था। यहाँ

आकर स्वाभिमानी मित्र लाचार रोगी पर हावी हो गया। अब वह यहाँ और नहीं रुकना चाहता। चलना ही होगा। और देर नहीं। नहीं तो बहू चिल्लाएगी।

कार की खिड़की पर झुककर बात चल रही है। कुछ ही देर में बेटा गाड़ी से बाहर निकलकर डॉ.हरबंस के साथ एक ओर चला आता है। बहू की नज़रें दोनों पर एकटक जमी हैं। फिर फ़ैसला पलट जाता है। दादाजी को कुछ दिन और यहीं रुकना होगा। हरबंस ने बेटे-बहू को मना लिया है। कुछ जाँचों की दरकार है। एक बार सब-कुछ देख-समझ लिया जाए, फिर चाहे जो निर्णय हो। निदान अभी से। कुछ निकले, न निकले।

बेटे-बहू के चेहरों पर पैसों के प्रश्नचिह्न हैं। हरबंस की मित्रता उनका उत्तर बनकर सामने प्रस्तुत होती है। दोनों बच्चों के चेहरे खिल उठते हैं। तब ठीक है! लेकिन जल्दी कीजिएगा अंकल। हम दोनों के पास काम बहुत है और फिर आराध्या का स्कूल भी तो है! इस ज़िम्मेदारी को हम जल्दी 'डिस्पोज़ ऑफ़' करना चाहते हैं। आप हमारा मतलब समझ रहे हैं न अंकल?

हरबंस हर मतलब को समझते हैं। लेकिन पहले वह उसे समझना चाहते हैं, जो उन्हें बंकिम में अबूझ लग रहा है। समाज के रोग के निदान व उपचार में उनके दक्षता नहीं। वे व्यक्तियों के चिकित्सक रहे हैं जीवन-भर। समष्टि की व्याधि असाध्य चाहे न हो, उनके काटे, न कटेगी। मुरझाये चेहरे के भीतर शोधक मन लिए वे वापस घर की सीढ़ियाँ चढ़ने लगते हैं।

***

चौथे गीयर में ऊँची लेकिन हल्की आवाज़ करती गाड़ी हवा-हवाई हो गयी है। वे लोग अभी दादाजी को नहीं ले जाएँगे। डॉ. हरबंस के यहाँ तमाम सुविधाएँ हैं। एक छत के नीचे मित्र-धर्म और वैद्य-धर्म, दोनों निभाये जा सकते हैं। तो जो होना-हवाना है, जल्दी हो जाए।

दादाजी भीतर प्रविष्ट होकर कोने की एक कुरसी पर बैठ जाते हैं। डॉ. हरबंस पीछे से घर का दरवाज़ा बन्द करते हैं, ताकि आगन्तुक-कक्ष में एकान्त पैदा हो सके। छुट्टी वाले दिन जिगरी दोस्त के साथ गम्भीरता लाना आसान काम नहीं। वह भी घर पर, जहाँ अभी ख़बर हुई नहीं, कि हर आदमी आवभगत में लग पड़ा।

"तुम जानते हो कि तुम बदल रहे हो बंकिम? पता है तुम्हें कुछ?" डॉ. हरबंस की आवाज़ में वह तटस्थता है, जो एक डॉक्टर के स्वर में अपेक्षित होती है। तटस्थता जिसे समाज नहीं बूझ पाता। तटस्थता जो रिश्तों-नातों की परिधि से आपको दूर शून्य में अवस्थित कर दे। जहाँ आप न मित्र हों, न कोई सम्बन्धी। निदान में निस्पृहता आये और उपचार में नीतिगत उदासीनता बनी रहे।

दादाजी कुछ कहने की स्थिति में नहीं हैं। ऊहापोह की उनकी हालत उन्हें मित्र हरबंस और डॉक्टर हरबंस, दोनों के सामने असमंजस में डाले हुए है। बातचीत का क्रम जारी है। सपाट चेहरे से मन के उद्वेग को ढँके दादाजी डॉक्टर के सवालों के टूटे-फूटे जवाब दे रहे हैं। मगर उनका ध्यान घर के भीतर से आ रही परिचित आवाज़ों पर है। हरबंस का परिवार, उसके दोनों बेटे, बहुएँ, पोते-पोतियाँ।

उनके कानों में समाती ये सुखद ध्वनियाँ उनकी उँगली पकड़कर उनके कल की तरफ़ ले जाती हैं। उनका अतीत। वह जो आज के वर्तमान सा विकृत-विद्रूप न था। जब परिवार छोटा था मगर प्रेम बड़ा। जब उनकी पत्नी जीवित थीं और घर में सुमति भी। जब उनका शरीर स्वस्थ और ऊर्जावान् हुआ करता और उन्हें लगता था कि बड़ी उम्र में बेटे के होने से उन्हें भाग्य से एक जोड़ी हाथ-पैर और मिल गये हैं।

शिल्पकार से गढ़ा था उन्होंने अपने प्यारे बेटे का जीवन। पग-पग पर ध्यान दिया, क़दम-क़दम पर मेहनत की। पढ़ाया-लिखाया, मनमरज़ी की लड़की से शादी की। कभी पैसों की माँग उठी तो पलट कर प्रश्न नहीं किया। समय ऐसा औंधा भी हो सकता है किसी का!

डॉ. हरबंस ने अपना काम आरम्भ कर दिया है। दादाजी की चाल में एक अजीब डगमगाहट का उन्हें पता चला है। साथ ही हाथों-पैरों पर स्पर्श का उन्हें कम आभास हो रहा है। सामान्य न्यूरोलॉजी की जाँच-पड़ताल इतना संज्ञान देने के लिए काफ़ी है। उन्होंने एक फ़ोन घुमाया है और बात हो गयी है। अभी उनकी एक मित्र पैथोलॉजिस्ट के यहाँ से एक लड़का आएगा और ख़ून का नमूना ले जाएगा। चार-पाँच घण्टों में रिपोर्टें स्पष्ट हो जाएँगी। देखते हैं क्या निकलता है! और अगर आगे कुछ जाँचें कराने के लिए लखनऊ जाना पड़ा, तो वे

दादाजी के साथ जाएँगे। तब तक खाओ-पियो यहीं, टीवी देखो, दुनिया-जहान की गप्प मारो।

घर के सदस्यों की बातों की ख़ुराक़ दादाजी की परती भूमि पर आषाढ़ी बूँदों की तरह पड़ती है। हरबंस वापस मित्र-मोड में है। घरवाले सदस्य अपने-अपने ढंग से उनकी ख़ातिर में जुटे हैं। अन्दर भोजन की तैयारी चल पड़ी है। आज दोपहर बड़े दिन बाद आये हो भाई! खाकर ही जाना। शाम तक रिपोर्टें भी देख ली जाएँगी। तुम्हारे घर इत्तिला पहुँचा दूँगा मैं। निश्चिन्त रहो। कोई कुछ नहीं पूछेगा।

डॉ. हरबंस के यहाँ भी खाना सादा ही बनता है। मांसाहारी न होने के बाद भी वे लोग दूध-इत्यादि ख़ूब इस्तेमाल करते हैं। अब जब तक तुम्हारी भाभी थीं बंकिम, तब तक तो उन्होंने न अण्डा छुआ, न मीट। लेकिन मैंने अपने किसी बच्चे पर कोई रोकटोक नहीं रखी। बाहर जो इच्छा हो सो खाओ, बस साफ़-सुथरा हो। और घर में बहू ने बच्चों को अण्डा देना शुरू किया, तो मैंने भी दो लेने शुरू कर दिये। पीले वाले हिस्से से परहेज़ करता हूँ अमूमन, लेकिन सफ़ेद रोज़ लेता हूँ। मगर तुम चिन्ता न करना। आज सब कुछ 'शुद्ध शाकाहारी' बना है तुम्हारे हिसाब से। और फिर छोटे बेटे के हाथ की खीर तो क्या कहने! एक बार खाओगे, तो उँगलियाँ चाटते रहोगे देर तक!

दादाजी अनमने ढंग से सिर हिलाते हैं। वे अब ज़्यादा मसालेदार भोजन नहीं कर पाते। मुँह आया हुआ है, उसमें जलन होने लगती है। डॉ. हरबंस ने इस बात को देख लिया था और ज़िक्र भी छेड़ा था, मगर तब वे चुप रह गये थे। और फिर दूध! सालों पहले वे उसे छोड़ चुके हैं। एक घूँट पिया नहीं कि पतले दस्त शुरू! ऐसी दूरी बनी डेयरी से कि दही-मट्ठा-खीर सब एक-एक कर के छूटते चले गये। अब तो बस दाल, थोड़ी सब्ज़ी घिये या तुरई की और दो फुल्के। इसी से काम

चल रहा है।

डॉ. हरबंस के यहाँ खाने की मेज़ पर ज़बरदस्ती की प्रथा नहीं है। जिसे जो लेना होगा, स्वयं माँगेगा। जीभ और पेट स्वयं अर्ज़ी देंगे और औपचारिकताएँ किनारे हो जाएँगी। और फिर वह स्वाद या भूख ही क्या, जो शिष्टता के बाँधे बँध जाए! और वैसे भी दादाजी तो बचपन के सुहृद हैं। साधिकार वे कहा करते थे हर काम के लिए जवानी में, यह हरबंस जानते हैं। अब न जाने इधर क्या हुआ है कि बिन बताये उनका घिसना-घुलना बदस्तूर जारी है।

दोपहर की मेज़ सजती है, घण्टे-भर में उठ जाती है। डॉ. हरबंस जानते हैं कि बंकिम ने ढंग से खाना नहीं खाया है। अभी उनकी बुद्धि तमाम दूसरी अशुभ आशंकाओं पर ध्यान गड़ाये है। दोस्ती के आग्रह-अनुग्रह फिर होते रहेंगे, दावतें आगे सजती रहेंगी। देखा जाएगा!

रिपोर्टों की उम्मीद शाम तक है, लेकिन ढाई बजे एक फ़ोन आता है। "डैडी, आपका फ़ोन!" कहकर बड़ी बहू रिसीवर थमा देती है। लाइन पर पैथोलॉजिस्ट हैं। वे कुछ ऐसा कहती हैं कि डॉ. हरबंस की आँखें विस्मय से चमक उठती हैं। स्वर में आश्चर्य भरे वे सिर से पाँव तक पुराने खम्बे की तरह दीवार की ओट लिए खड़े अपने मित्र को देख रहे हैं।

असंख्य रेखाएँ डॉ. हरबंस के चेहरे पर अब घुमड़ने लगी हैं। अहम सुराग मिलने पर जिस तरह पेशेवर जासूस की बेचैनी बढ़ जाती है, वही हाल उनका भी हो रहा है। अब उनसे किस तरह शाम का इन्तज़ार होगा? कब ख़ून की जाँचें अपनी व्यथा-कथा लेकर वापस लौटेंगी? कब यह आवृत्त प्रतीक्षा-पट रहस्य का उदघाटन करेगा?

शाम भी आती है, जैसे सब आते हैं। वह घण्टी इतनी सुरीली डॉ.

हरबंस को कभी न लगी थी। पैथोलॉजी वाला लड़का उन्हें साक्षात् देवदूत नज़र आता है। वे उसके हाथ से वह लिफ़ाफ़ा लेते हैं और धन्यवाद देकर वापस भीतर आ जाते हैं। उनकी आँखें काग़ज़ के उस टुकड़े पर छपी इबारतों से बातचीत कर रही हैं। वे समझ नहीं पा रहे कि हँसें कि रोएँ? प्रसन्न हों अथवा खिन्न? बात सुलझ गयी है या अभी और उलझन बाक़ी है? ओह बंकिम! तुम अब तक कहाँ थे मेरे दोस्त!

वे चटपट अपनी आलमारी से पैथोलॉजी का एक एटलस निकालते हैं और एक पन्ना खोले दादाजी की तरफ़ बढ़ते हैं। "इस चित्र को ध्यान से देखो, बंकिम? पहचानते हो इसे?" वे उनसे पूछते हैं।

"नहीं।"

"यह तुम हो।" वे हलकी हँसी के साथ दादाजी के चेहरे पर कुछ ढूँढ़ते हुए कहते हैं।

उस पृष्ठ पर मनुष्य के ख़ून की स्लाइड का एक बड़ा सा चित्र है। शायद कोई बूढ़ी कोशिका है। डॉ. हरबंस उसे बहुखण्डीय (हाइपरसेगमेंटेड) न्यूट्रोफ़िल के नाम से पुकारते हैं। शरीर के प्रतिरक्षा-तन्त्र के वे सिपाही, जो अस्थि-मज्जा में जन्म पाकर पूरा जीवन देह-रक्षा में गुज़ार देते हैं। ख़ून में हर समय चौकसी, अंग-अंग में चौबीस घण्टे पहरा। उनका केन्द्रक (न्यूक्लियस) जो उम्र बढ़ने के साथ विभाजित होता जाता है, उसमें नये खण्ड पैदा होते जाते हैं। इस तरह कि उसकी मृत्यु के समय उसके पाँच-छह परस्पर जुड़े हुए फाँक तक हो जाते हैं।

"मैं? सत्तर की उम्र में लगभग सब बहुखण्डित हो जाते हैं डॉक्टर! किताब में ऐसा क्या दिखा रहे हो!" दादाजी अपनी समस्या हो अब भी नकार रहे हैं ।

" हाँ। तुम हो। उम्र बढ़ रही है, लेकिन विकास ठीक से नहीं हो रहा। देह पुरानी पड़ रही है, लेकिन मन अब भी अतीत में अटका पड़ा है। पुरानी यादें। पुरानी बातें। लोग पैदा होते हैं, समय काटते हैं और मर जाते हैं। मगर विकास एक अलग क्रिया है। वह टाइमपास नहीं है। वह हो जाएगा, ऐसा नहीं माना जा सकता। वह सायास करना पड़ता है। कोशिश, कोशिश, कोशिश। अथक, पुरज़ोर, लगातार। बदलना पड़ता है। भूलना ... "

"मैंने कौन सी कोशिश नहीं की?"

"बाक़ी बातें हम बाद में करेंगे बंकिम। मगर जानते हो कि तुम्हारी देह में क्या बीमारी है? तुम्हारे जिस्म में बी 12 नाम का विटामिन नहीं है। जो कुछ तुम हो गये हो और होते जा रहे हो न, वह इसी कमी के कारण है। दूध नहीं पीते न तुम?"

"नहीं? मुझे हजम नहीं होता।"

"अण्डे।"

"मैं शुद्ध शाकाहारी हूँ। न अण्डे, न मांस।"

"कोई और सप्लीमेंट? मेरा मतलब है विटामिन-वग़ैरह की गोलियाँ?"

"नहीं। फ़ालतू की दवाएँ खाना मेरी आदत नहीं।"

"अच्छी बात है। फ़ालतू दवाएँ कभी नहीं खानी चाहिए। लेकिन वह तो किसी तरह लो भाई, जिसके बिना इंसान का जीना सम्भव नहीं है।"

"जैसे?"

"विटामिन बी 12 शुद्ध शाकाहार से नहीं पाया जा सकता भाई।

या तो उसे मांसाहार-दुग्धाहार से लिया जा सकता है, अथवा गोलियों के माध्यम से। ख़ैर भोजन में अपर्याप्त मात्रा के अलावा विटामिन बी 12 की कमी के और भी कारण होते हैं। तुम्हें और कोई बीमारी तो नहीं?"

"नहीं।"

"कोई ऑपरेशन-वग़ैरह?"

"नहीं।"

"शराब?"

"मैं दूध और शराब, वर्षों दोनों से दूर रहा हूँ हरबंस।"

"कोई दवा लेते हो?"

"बस गैस की गोलियाँ।"

"हूँ। इसीलिए यह सब कुछ घट रहा है तुम्हारे संग। ख़ैर। मैंने कुछ और जाँचों को लखनऊ भेजने का फ़ैसला किया है इसी विटामिन की कमी की बाबत। रिपोर्टें कुछ समय लेंगी। और मैं अपने एक मित्र न्यूलॉजिस्ट से भी बात करूँगा। तब तक लेकिन तुम्हें कुछ इंजेक्शन लगेंगे नियमित रूप से।"

"कैसे इंजेक्शन भाई? मतलब खीर नहीं खाई, तो तुम सीधे सुइयाँ घोपने पर आ गये!"

"ये इंजेक्शन सीधे तुम्हारे ख़ून में विटामिन बी 12 पहुँचाएँगे भाई। वह कमी पूरी होगी जो सालों से बनी हुई है तुम्हारी देह में। पके हुए मुँह में यह लाल चिकनी जीभ देखी है सुबह बाथरूम में नहाते वक़्त? और ये लड़खड़ाहट-भरे क़दम और कमज़ोर पड़ती याददाश्त?"

"आवाज़ भी बदल गयी है।" दादाजी के मन में जगती उम्मीद चाहती है कि कुछ छूट न जाए।

"हाँ, अब कम बुलन्द है। यह सब तुम्हारे प्योर वेजिटेरियन होने की वजह से है।"

बात बन चुकी है। दादाजी को पहला बी 12 का इंजेक्शन उसी शाम पुट्ठे में लगाया जाता है। एक हफ़्ते तक रोज़ यह डोज़ उन्हें दी जाएगी। फिर उसका अन्तराल बढ़ेगा। धीरे-धीरे दिनों-महीनों में स्थितियाँ सामान्य की तरफ़ लौटती हैं। दादाजी के चेहरे पर कान्ति वापस है और चाल में पुरानी स्थिरता। यादाश्त भी पहले से काफ़ी बेहतर हुई है और वाणी की पुरानी खनक का भी दोबारा जन्म हुआ है।

लखनऊ से पधारी जाँच-रिपोर्टों में विटामिन बी 12 का स्तर न्यूनतम निकला है। लेकिन बाक़ी सब कुछ सामान्य आया है। दादाजी की यह हालत उनके असन्तुलित आहार के कारण हुई है, जिसमें सालों से ली जा रही गैस की गोलियों ने आग में घी-सा काम किया है। दूध न ले पाने की उनकी समस्या जस-की-तस है। इतनी की डॉ. हरबंस के कहने पर भी वे दही-मट्ठा-खीर कुछ लेने को राज़ी नहीं। अण्डे-गोश्त का तो सवाल ही पैदा नहीं होता। ऐसे में डॉ. हरबंस ने उनके लिए विटामिन बी 12 की गोलियों का नुस्ख़ा लिख दिया है, जिसे वे नियमित रूप से ले रहे हैं।

पहले से हुए सुधार के कारण बहू ने अपने पति से दोबारा परामर्श किया है। पिताजी इतने भी बुरे नहीं हैं : उन्हें घर पर अभी रखा जा सकता है। अब तो वे पहले से काफ़ी ठीक भी हो गये हैं। घर पर रहेंगे तो आराध्या को पढ़ा ही दिया करेंगे और फिर गाहे-बगाहे चौकीदारी भी हो जाएगी। और फिर सबसे ज़रूरी बात! शायद बनारस वाली

प्रॉपर्टी के साथ उन्हें कुछ और बातें भी याद आ जाएँ!

"बी 12 की गोलियाँ ठीक समय पर लेते रहिएगा पापा! खत्म होने से पहले ही हमें सूचित कर दीजिएगा।" बेटा मधुर स्वर में याद दिलाते हुए कहता है।

दादाजी अब कभी आराध्या की चॉकलेट लाना नहीं भूलते। मगर उन्होंने जीवन में ऐसा बहुत कुछ पुराना समेट रखा है जिसे बिसारने का मन करता है। अपनी गुज़री पत्नी, अपने बच्चों का बचपन, उनके परिवार। काश! ऐसा होता कि विटामिन बी 12 के सेवन से सारी सुखद यादें वापस न आतीं! काश कि तन और मन मित्र होकर एक साथ एक ही दिशा में दौड़ सकते! मेरे हरबंस, पता नहीं तुमने मुझे स्वस्थ करके अच्छा किया या बुरा! पता नहीं मेरी तबियत पहले बेहतर थी या अब है! पता नहीं मैं यह अब और क्यों पता करना चाहता हूँ! पता कर भी लूँगा तो हो क्या जाएगा! कुछ जान लेना उसका मन-माफ़िक़ हो जाना थोड़े ही होता है। क्यों हरबंस मेरे भाई? बोलो। बताओ। जवाब नहीं दोगे अब?

* * *